नईदुनिया

क्या एआई सचमुच हमारी छुट्टियाँ बढ़ा देगी...?

अपूर्व तिवारी

दुनिया के बड़े उद्योगपति चार दिन के कार्य सप्ताह का सपना दिखा रहे हैं, लेकिन इतिहास बताता है कि हर नई तकनीक ने इंसान से कम नहीं, कई बार ज्यादा काम कराया है ।

कल्पना कीजिए, गुरुवार शाम कार्यालय से निकलते समय आपको पता हो कि अब सीधे सोमवार को काम पर लौटना है। तीन दिन का सप्ताहांत, परिवार के साथ समय, यात्रा, शौक और आराम। यह सपना अब केवल कर्मचारियों का नहीं रहा, बल्कि दुनिया के कई बड़े उद्योगपति भी मानने लगे हैं कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) के दौर में ऐसा संभव है।

लेकिन क्या सचमुच ऐसा होने वाला है?

इतिहास कहता है कि जब भी कोई नई तकनीक आई, उसने काम करने का तरीका तो बदला, लेकिन काम के घंटे कम नहीं किए। कई बार तो लोगों की व्यस्तता पहले से भी बढ़ गई। इसलिए असली सवाल यह नहीं है कि एआई कितनी ताकतवर होगी, बल्कि यह है कि उसका फायदा किसे मिलेगा – कर्मचारियों को या कंपनियों को?

भविष्य की तस्वीर कौन बना रहा है?

दुनिया के कई बड़े उद्योगपति मानते हैं कि एआई इंसानों के काम का बड़ा हिस्सा अपने हाथ में ले लेगी और लोगों को कम काम करना पड़ेगा।

अरबपति निवेशक **स्टीव कोहेन** का मानना है कि चार दिन का कार्य सप्ताह जल्द ही सामान्य बात हो सकता है।

ज़ूम के मुख्य कार्यकारी अधिकारी **एरिक युआन** इससे भी आगे जाते हैं। उनका कहना है कि आने वाले समय में लोग सप्ताह में केवल तीन दिन काम करेंगे और बाकी समय एआई उनकी जगह कई जिम्मेदारियां संभालेगी।

बिल गेट्स का अनुमान और भी साहसिक है। उनका मानना है कि अगले लगभग दस वर्षों में कुछ क्षेत्रों में लोगों को सप्ताह में केवल दो दिन काम करना पड़ सकता है।

एलन मस्क का कहना है कि भविष्य में काम करना मजबूरी नहीं रहेगा। लोग केवल अपनी रुचि के लिए काम करेंगे। जैसे आज कोई संगीत सीखता है, चित्र बनाता है या खेल खेलता है।

एनवीडिया के प्रमुख **जेनसन हुआंग** भी चार दिन के कार्य सप्ताह की संभावना देखते हैं। लेकिन दिलचस्प बात यह है कि वे खुद आज भी सप्ताह के सातों दिन काम करते हैं।

जेपी मॉर्गन के प्रमुख **जेमी डाइमन** भविष्य में साढ़े तीन दिन के कार्य सप्ताह की बात करते हैं, लेकिन फिलहाल वे कर्मचारियों की सप्ताह में पांच दिन कार्यालय उपस्थिति के सबसे बड़े समर्थकों में शामिल हैं।

यानी भविष्य की सबसे बड़ी बातें करने वाले लोग भी आज उसी कार्य संस्कृति में काम कर रहे हैं, जिसे वे बदलने की भविष्यवाणी कर रहे हैं।

इतिहास हमें क्या सिखाता है?

यह पहली बार नहीं है जब किसी नई तकनीक के साथ यह दावा किया गया हो कि इंसानों का काम कम हो जाएगा।

टाइपराइटर आया तो कहा गया कि दफ्तरों का काम आसान होगा। कंप्यूटर आए तो लगा कि फाइलों का बोझ घट जाएगा। इंटरनेट ने वादा किया कि दुनिया तेज हो जाएगी। स्मार्टफोन ने हर जानकारी हाथ में ला दी।

तकनीक ने ये सब किया भी।

लेकिन क्या लोगों के पास खाली समय बढ़ा?

शायद नहीं।

ई-मेल ने चिट्ठियों की जगह ले ली, लेकिन अब कर्मचारी रात में भी ई-मेल का जवाब देते हैं। मोबाइल ने सुविधा दी, लेकिन उसी ने दफ्तर को जेब में भी डाल दिया। ऑनलाइन बैठकों ने यात्रा का समय बचाया, लेकिन उसी समय में एक के बजाय तीन बैठकें होने लगीं।

तकनीक ने काम आसान किया, लेकिन कंपनियों ने उसी बचत का इस्तेमाल और ज्यादा काम लेने में किया।

यही इतिहास का सबसे बड़ा सबक है।

शोध की तस्वीर उम्मीद भी दिखाती है और चेतावनी भी

कुछ देशों ने चार दिन के कार्य सप्ताह का प्रयोग किया और परिणाम उत्साहजनक रहे।

आइसलैंड में काम के घंटे कम किए गए। इसके बावजूद उत्पादकता में कोई गिरावट नहीं आई। कर्मचारियों का तनाव कम हुआ और उनका पारिवारिक जीवन बेहतर हुआ।

ब्रिटेन में 61 कंपनियों पर हुए अध्ययन में भी लगभग यही नतीजे सामने आए। कर्मचारियों ने कम तनाव महसूस किया, नौकरी छोड़ने वालों की संख्या घटी और कई कंपनियों का कारोबार भी प्रभावित नहीं हुआ।

न्यूज़ीलैंड, जापान, ऑस्ट्रेलिया और **ब्राज़ील** में भी ऐसे प्रयोग सफल माने गए। लेकिन कहानी यहीं खत्म नहीं होती।

हाल में एक तकनीकी कंपनी के लगभग 200 कर्मचारियों पर हुए अध्ययन में पाया गया कि एआई आने के बाद उनका काम कम नहीं हुआ। उलटे उनसे पहले की तुलना में ज्यादा काम लिया जाने लगा। वर्ष 2025 के एक अन्य अध्ययन में भी सामने आया कि एआई का इस्तेमाल करने वाले कई कर्मचारियों के काम के घंटे बढ़ गए। छुट्टियां कम हुईं और काम की रफ्तार तेज हो गई। यानी एआई समय बचा रही थी, लेकिन वह समय कर्मचारियों को नहीं मिला।

ऐसा क्यों होता है?

कारण बहुत सीधा है।

यदि पहले कोई कर्मचारी एक दिन में दस रिपोर्ट तैयार करता था और एआई की मदद से अब बीस रिपोर्ट तैयार कर सकता है, तो अधिकांश कंपनियां उससे बीस रिपोर्ट ही मांगेंगी।

यानी उत्पादकता बढ़ने का लाभ पहले कंपनी को मिलता है, कर्मचारी को नहीं।

जब तक कंपनियां यह तय नहीं करेंगी कि तकनीक से बचा समय कर्मचारियों को भी मिलेगा, तब तक केवल एआई आने से कार्य सप्ताह छोटा नहीं होगा।

भारत की तस्वीर अलग है

भारत में चार दिन के कार्य सप्ताह की चर्चा अभी शुरुआती दौर में है।

सूचना प्रौद्योगिकी, डिज़ाइन, मीडिया और कुछ निजी क्षेत्रों में यह प्रयोग संभव हो सकता है। लेकिन अस्पताल, पुलिस, बैंक, परिवहन, कारखाने, स्कूल और सरकारी कार्यालय जैसे क्षेत्रों में इसे लागू करना आसान नहीं होगा।

भारत जैसे देश में अभी भी करोड़ों लोगों की चिंता काम के दिन कम करना नहीं, बल्कि स्थायी रोजगार पाना है। इसलिए यहां प्राथमिकता रोजगार बढ़ाने और उत्पादकता सुधारने की होगी।

असली बदलाव मशीन नहीं, सोच लाएगी

एआई निश्चित रूप से काम करने का तरीका बदल रही है। वह दोहराए जाने वाले कई काम इंसानों से बेहतर और तेज कर सकती है। इससे लोगों के पास रचनात्मक काम करने का अवसर बढ़ सकता है।

लेकिन यदि कार्य संस्कृति नहीं बदली, तो वही एआई कर्मचारियों के लिए अतिरिक्त दबाव का कारण भी बन सकती है।

इसलिए बहस चार दिन के कार्य सप्ताह की नहीं, बल्कि **काम और जीवन के बीच संतुलन** की होनी चाहिए।

भविष्य का फैसला कौन करेगा?

यह तय है कि एआई दुनिया बदलने वाली तकनीक है। लेकिन वह अपने आप किसी कर्मचारी को शुक्रवार की छुट्टी नहीं देगी।

यह फैसला कंपनियों के निदेशक मंडल, सरकारों की श्रम नीतियां और समाज की प्राथमिकताएं मिलकर करेंगी।

इतिहास हमें सावधान करता है कि हर नई तकनीक के साथ इंसान ने पहले ज्यादा काम किया है और बाद में उसके लाभ मिले हैं। इसलिए चार दिन का कार्य सप्ताह केवल तकनीकी उपलब्धि नहीं, बल्कि एक सामाजिक और आर्थिक निर्णय होगा।

एआई भविष्य जरूर बदल सकती है, लेकिन यह भविष्य कितना मानवीय होगा, इसका फैसला एल्गोरिद्म नहीं, इंसान करेंगे।

सावधानी हटी, दुर्घटना घटी: बारिश में सुरक्षित ड्राइविंग की जरूरत

आजकल एक्सप्रेस वे के बनने के कारण और नई नई गाड़ियों के कारण दुर्घटनाओं में वृद्धि हो गई है। जब ज्यादा बारिश हो रही हो तो उस रास्ते पर नहीं जाएं भले ही आपको लंबा रास्ता लेना पड़े।

डॉ. विश्वास तिवारी

बरसात का सुहाना मौसम हमें गर्मी से राहत देता है, लेकिन अपने साथ कई समस्याएं भी लाता है। बारिश में मच्छरों के कारण एक ओर जहां मलेरिया, डेंगू और चिगनगुनियां के मामले बढ़ते है, वही पानी जनित बीमारियां जैसे उल्टी, दस्त के मामलों में भी बढ़ोत्तरी होती है। इसी मौसम में सड़क हादसों में भी वृद्धि हो जाती है। जर्जर इमारतों, पुरानों स्कूलों की इमारतों का गिरना भी इस मौसम में आम बात है। यह हादसे जनता की लापरवाही और प्रशासन की अनदेखी का नजरिया है। हाल ही में जिस दिल्ली-देहरादून इकोनामिक कारिडोर का उद्घाटन अप्रैल माह में प्रधानमंत्री ने किया था, वह ही सड़क पहली बारिश में ही धंस गई जिसमें कई वाहन दुर्घटनाग्रस्त हो गए। यह तो अच्छा हुआ कि किसी की जान नहीं गई, लेकिन सोचने वाली बात यह है कि आखिर हाल ही में बनी सड़क सिर्फ ढाई महीने में ही पहली बरसात का सामना क्यों नहीं कर पाई? ऐसा लगता है कि इसे बनाते समय इसकी गुणवत्ता का ध्यान नहीं रखा गया या फिर जल निकासी की उचित व्यवस्था नहीं की गई। यह कोई पहली घटना नहीं है। हर राज्य में कई सड़क क्षतिग्रस्त हो जाती है तो कहीं नया बना पुल क्षतिग्रस्त हो जाता है। कई पुल तो उद्घाटन के पहले ही गिर जाते है। सड़क दुर्घटनाओं में प्रति वर्ष सबसे ज्यादा लोगों की मौत भारत में होती है।

आंकड़ों के अनुसार प्रति वर्ष भारत में डेढ़ लाख से अधिक लोगों की मौत होती है। संख्या के आधार पर भारत दुनिया में सबसे आगे है, क्योंकि यहां वैश्विक दुर्घटनाओं का हिस्सा लगभग 11 प्रतिशत होता है। एक रिपोर्ट के अनुसार देश में हर घंटे 53 सड़क दुर्घटनाएं होती है और हर चार मिनिट में एक मौत होती है। कई बार इस का कारण केवल गुणवत्ता ही नहीं होती है बल्कि उसकी डिजाइन में भी खामियां होती है जो ऐसी दुर्घटनाओं का कारण बनती है। राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण ने इस घटना को गंभीरता से लिया और वहां इसस जुड़े कई लोगों को निलंबित कर दिया और कंपनी को भी कारण बताओ नोटिस जारी कर दिया। ऐसे ज्यादातर मामलों में कुछ दिनों बाद ये अधिकारी या तो फिर से बहाल हो जाते है या उनके स्थानांतरण कर दिया जाता ही ऐसी कंपनियों को ब्लैक लिस्टैंड कर दिया जाता है। ऐसी स्थिति में ये कंपनियां नाम बदलकर फिर से सक्रिय हो जाती है। सड़क दुर्घटनाओं में वृद्धि से होने वाली मौतों से परिवार उजड़ रहे है। 2024 में जारी सड़क परिवहन व राजमार्ग मंत्रालय की रिपोर्ट के अनुसार देश के पुलिस रिकार्ड में दर्ज 4 लाख सित्यासी हजार सात सौ सात दुर्घटनाओं में एक लाख डेढ़ हजार से ज्यादा लोगों की मौत हुई। सड़क दुर्घटनाओं में होने वाली मौतों का मुख्य कारण सड़कों की खस्ता हालत, गड्ढे, खुले हुए मेनहोल, शराब पीकर या लापरवाही से गाड़ी चलाना, यातायात नियमों का पालन नहीं करना, बिना प्रशिक्षण के गाड़ी चलाना, बिना रूके लंबे समय तक गाड़ी चलाना, गाड़ी चलाते समय मोबाइल से बात करना, पूरी नींद लिए वाहन चलाना, हेलमेट नहीं पहनना, सीट बेल्ट का उपयोग नहीं करना और आजकल तो रील बनाने के लिए खतरनाक स्टंट करना इत्यादी हैं।

बरसात के मौसम में लोग कई बार प्रशासन के नियमों की अनदेखी करके पिकनिक मनाने झरनों में नहानें तालाब या नदियों के किनारे चले जाते है, ऐसे में एकाएक पानी का स्तर बढ़ने पर फंस जाते है और उन्हें बचाने के लिए कई बार सेना को आना पड़ता है। ज्यादा बारिश से पुलिया पर पानी होने के बावजूद उसमें अपने दो पहियां वाहन या गाड़ियां उतार देते है और अपनी जान गंवा देते है। पुराने लोग कहते थे कि बिजली, पानी और आग से कभी खिलवाड़ नहीं करना चाहिए। भले ही आपको तैरना आता हो, लेकिन पानी के वेग के आगे कोई नहीं टिकता है। कई बार ऐसा भी होता है कि आपने दोस्तों या रिश्तेदार को बचाने के चक्कर में लोगों की जान चली जाती है। सुहाने मौसम के कारण लोग पहाड़ों पर घूमने के लिए निकल जाते है। हाल ही में हिमाचल प्रदेश के हाईकोर्ट ने एक जरूरी नागरिक समस्या की ओर प्रशासन का ध्यान दिलाया है, जिसमें सड़क के किनारे रखे हुए दुर्घटनाग्रस्त वाहनों को तत्काल हटाने के निर्देश दिए गए है। पहाड़ी इलाकों में सड़कें संकरी और घुमावदार होती है, वहां सड़क के हर इंच की कीमत होती है। ये गाड़ियां सड़क की चौड़ाई को कम कर देती है। इससे आपातकालीन सेवाओं की आवाजाही में बाधा बनती है। बरसात के मौसम में अब कम दृश्यता होती है और सड़कें फिसलन भरी होती है तो ऐसी लापरवाही दुर्घटना का कारण बनती है।

आजकल एक्सप्रेस वे के बनने के कारण और नई नई गाड़ियों के कारण दुर्घटनाओं में वृद्धि हो गई है। जब ज्यादा बारिश हो रही हो तो उस रास्ते पर नहीं जाएं भले ही आपको लंबा रास्ता लेना पड़े। अगर आपको जलभराव वाले रास्ते से गुजरना भी पड़े तो गाड़ी को पहले गियर में ही रखें और धीरे-धीरे चले। अचानक ब्रेक लगाने से पानी इंजन में भी जा सकता है और गाड़ी का संतुलन बिगड़ सकता है। अगर गाड़ी पानी में बंद हो गई है तो उसे तुरंत चालू करने की कोशिश न करे, ऐसा करने पर गाड़ी के इंजन को भारी नुकसान हो सकता है। तेज बारिश में दृश्यता कम हो जाती है इसलिए गाड़ी की लाइट चालू रखें ताकि दूसरी गाड़ियों को आप साफ दिखाई दे। जब आप पानी से निकल जाएं तो ब्रेक को हल्का हल्का दबाते रहे, इससे ब्रेक पेड़ सूखते है और गाड़ी के ब्रेक सही ढंग से काम करते है। लोग यह सोचते है कि अब मानसून आ रहा है तो गाड़ी गंदी हो जाएगी इसलिए गाड़ी की सर्विसिंग बाद में कराएंगे, लेकिन यह बिल्कुल गलत है गाड़ी की सर्विसिंग बारिश के पहले ही करा लेनी चाहिए ताकि ब्रेक आईल वगैराह सब ठीक हो। इसके अलावा टायरों की हवा भी ठीक होनी चाहिए।

'बारिश की बूंदें जीवन का संदेश देती है, लेकिन सड़क पर सुरक्षा के नियमों की अनदेखी इन्हें हादसों में बदल सकती है, इसलिए सावधानी ही सबसे बड़ा बचाव है'।

चार साल में 47 हजार बेटियां गायब

प्रदेश में मानव तस्करी का काला कारोबार बेनकाब

मध्यप्रदेश के नक्शे पर अब सन्नाटा फैल रहा है। यह सन्नाटा किसी जंगल का नहीं, बल्कि 47 हजार से अधिक परिवारों का है। बीते चार वर्षों में प्रदेश से 47 हजार से ज्यादा महिलाएं और बच्चियां लापता हुई हैं। इनमें से अधिकांश का आज तक कोई पता नहीं चल सका है। यह आंकड़ा सामने आने के बाद हर किसी के पैरों तले जमीन खिसक गई। इसका अर्थ है कि हर दिन औसतन 32 बेटियां गायब हुईं और हर सप्ताह 220 से अधिक परिवार उजड़ गए। इस दौरान सिस्टम सुस्त बना रहा, फाइलें चलती रहीं और तस्करों का नेटवर्क फलता-फूलता रहा।

अब पुलिस मुख्यालय ने पूरे मामले की जांच के आदेश दिए हैं और इसे एंटी ह्यूमन ट्रैफिकिंग सेल को सौंपा गया है। इससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि सरकार भी मान रही है कि यह सामान्य गुमशुदगी का मामला नहीं, बल्कि सुनियोजित मानव तस्करी और संगठित अपराध का गंभीर मामला हो सकता है।

47 हजार का आंकड़ा केवल एक संख्या नहीं है। इनमें बड़ी संख्या नाबालिग बच्चियों की है, जिनकी उम्र 14, 15 और 17 वर्ष के बीच है। जो बेटियां स्कूल जाने की उम्र में थीं, वे आज पता नहीं किस हाल में हैं। भोपाल, इंदौर, जबलपुर, ग्वालियर, सागर और रीवा सहित लगभग हर जिले से शिकायतें सामने आईं, लेकिन अनेक मामलों में एफआईआर दर्ज करने में देरी हुई, जांच औपचारिकता बनकर रह गई और फाइलें बंद कर दी गईं। परिजन थानों के चक्कर काटते रहे, जबकि कई जगह पुलिस 24 घंटे पूरे होने का इंतजार करती रही।

मानव तस्करों के तौर-तरीके भी बदल चुके हैं। पहले बहला-फुसलाकर ले जाया जाता था, अब सोशल मीडिया पर फर्जी प्रोफाइल बनाकर दोस्ती की जाती है, नौकरी का झांसा दिया जाता है, शादी के सपने दिखाए जाते हैं और फिर एक दिन लड़की घर से निकलती है और वापस नहीं लौटती। कुछ गिरोह रेलवे स्टेशन और बस स्टैंड पर सक्रिय हैं, जबकि कुछ एजेंट गांव-गांव जाकर गरीब परिवारों की बेटियों को शहर में काम दिलाने के नाम पर ले जाते हैं और बाद में उन्हें दूसरे राज्यों तक पहुंचा देते हैं। कुछ मामलों में नेपाल और बांग्लादेश तक मानव तस्करी की आशंकाएं भी सामने आई हैं। सबसे चिंताजनक बात यह है कि ऐसे नेटवर्क में स्थानीय स्तर पर मिलीभगत की आशंका भी जताई जा रही है।

अब जब मामला एंटी ह्यूमन ट्रैफिकिंग सेल के पास पहुंचा है तो उम्मीद जगी है कि पुराने मामलों की समीक्षा होगी, अधिक प्रभावित जिलों की रिपोर्ट मंगाई जाएगी और नेटवर्क को तोड़ने का प्रयास किया जाएगा। लेकिन प्रश्न यह भी है कि क्या एक सेल के पास इतने बड़े अभियान के लिए पर्याप्त संसाधन, प्रशिक्षित स्टाफ, आधुनिक तकनीक और दूसरे राज्यों के साथ प्रभावी समन्वय की व्यवस्था है? यदि इन सवालों का समाधान नहीं हुआ तो यह जांच भी पहले की तरह ठंडी पड़ सकती है।

मानव तस्करी के पीछे गरीबी, बेरोजगारी, सामाजिक उदासीनता और पुलिस की लापरवाही जैसे कई कारण हैं। कई परिवार बदनामी के डर से शिकायत दर्ज नहीं कराते। वहीं गुमशुदगी के मामलों में समय पर साइबर जांच और अंतरराज्यीय समन्वय भी अक्सर नहीं हो पाता। दूसरी ओर, मुकदमे वर्षों तक चलते हैं और कई आरोपी साक्ष्यों के अभाव में बच निकलते हैं।

स्थिति की गंभीरता को देखते हुए हर जिले में महिला हेल्प डेस्क चौबीसों घंटे सक्रिय होनी चाहिए। रेलवे स्टेशन, बस स्टैंड और सीमावर्ती क्षेत्रों में विशेष निगरानी बढ़ाई जाए। स्कूलों और कॉलेजों में साइबर सुरक्षा तथा आत्मरक्षा का प्रशिक्षण अनिवार्य किया जाए। गुमशुदा महिलाओं का एकीकृत डाटाबेस तैयार कर सभी राज्यों के साथ साझा किया जाए। मानव तस्करी के मामलों के लिए फास्ट ट्रैक अदालतें बनें और दोषियों को शीघ्र एवं कठोर दंड मिले। सोशल मीडिया मंचों के साथ समन्वय बढ़ाकर फर्जी प्रोफाइल और संदिग्ध गतिविधियों पर तत्काल कार्रवाई सुनिश्चित की जाए।

यह केवल 47 हजार गुमशुदा बेटियों का मामला नहीं, बल्कि हजारों परिवारों की टूटी हुई उम्मीदों और समाज की सामूहिक जिम्मेदारी का प्रश्न है। यदि इस बार भी जांच केवल कागजों तक सीमित रही तो यह हमारी व्यवस्था की सबसे बड़ी विफलता होगी। अब समय भाषणों का नहीं, ठोस कार्रवाई का है। हर लापता बेटी की सुरक्षित घर वापसी ही इस पूरे तंत्र की सबसे बड़ी परीक्षा है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

पीओके जल रहा है, इस्लामाबाद से दमन के आदेश

पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में अब खून की होली खेली जा रही है। रावलकोट में खाद्य आपूर्ति बहाल करने और बुनियादी सुविधाओं की मांग कर रहे लोगों पर सुरक्षा बलों ने गोलियां चला दीं। दो लोगों की मौत हुई, 50 से अधिक घायल हुए और इस्लामाबाद ने इसे कानून-व्यवस्था की कार्रवाई बता दिया। यह कानून-व्यवस्था नहीं, बल्कि खुला दमन है। यह उस गुस्से का जवाब है, जो दशकों से वहां के लोगों के भीतर जमा होता रहा है। पीओके के पहाड़ों से निकलने वाली बिजली पूरे पाकिस्तान को रोशन करती है। वहां बड़े-बड़े बांध हैं, जलविद्युत परियोजनाएं हैं और पानी की कोई कमी नहीं है। विडंबना यह है कि जिस जमीन पर बिजली पैदा होती है, उसी जमीन के लोगों को सबसे महंगे बिजली बिल चुकाने पड़ते हैं।

स्थानीय लोग लंबे समय से सस्ती बिजली की मांग कर रहे हैं, लेकिन उन्हें जवाब में लाठी, जेल और अब गोलियां मिली हैं। इससे बड़ा विरोधाभास और क्या होगा कि संसाधन किसी क्षेत्र के हों और उसका लाभ कहीं और पहुंच जाए। पीओके की लगभग 66 प्रतिशत आबादी खेती और पशुपालन पर निर्भर है, लेकिन इसके बावजूद बड़ी संख्या में लोग आज भी दो वक्त की रोटी के लिए संघर्ष कर रहे हैं। कुपोषण, बेरोजगारी और महंगाई ने हालात और गंभीर बना दिए हैं। पहाड़ी इलाकों में अनेक परिवारों के पास महीने भर का अनाज तक नहीं होता। कारण स्पष्ट है। यहां से अनाज, पानी और खनिज संसाधनों का उपयोग तो होता है, लेकिन आर्थिक लाभ इस्लामाबाद तक सीमित रह जाता है। स्थानीय बाजारों में आटे के दाम लगातार बढ़ रहे हैं। लोग सब्सिडी की मांग करते हैं तो सरकार बजट का हवाला देती है, लेकिन सुरक्षा बलों और दमन के लिए संसाधनों की कोई कमी दिखाई नहीं देती।

जॉइंट अवामी एक्शन कमेटी ने सरकार के सामने 38 सूत्रीय मांगपत्र रखा था। मांगें असाधारण नहीं थीं। सस्ती बिजली, आटे पर सब्सिडी, शरणार्थी सीटों की व्यवस्था समाप्त करने और स्थानीय युवाओं को रोजगार देने जैसी बुनियादी मांगें शामिल थीं। सरकार ने संवाद का रास्ता चुनने के बजाय सख्ती का रास्ता अपनाया। विरोध करने वाले लोगों पर कार्रवाई हुई, बड़ी संख्या में कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार किया गया और नेताओं पर कठोर कानून लगाए गए। अनेक लोगों के लापता होने के भी आरोप लगाए जा रहे हैं। ऐसे माहौल में लोकतंत्र और नागरिक अधिकारों की बात बेमानी लगती है। विडंबना यह भी है कि पाकिस्तान अंतरराष्ट्रीय मंचों पर कश्मीर में मानवाधिकारों की बात करता है, लेकिन अपने कब्जे वाले कश्मीर में लोगों की आवाज दबाने के आरोपों से घिरा रहता है। वहां अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सीमित है, मीडिया पर दबाव की शिकायतें सामने आती रहती हैं और विरोध करने वालों को कठोर कार्रवाई का सामना करना पड़ता है। यही दोहरा रवैया अब स्थानीय जनता भी समझने लगी है।

क्षेत्र में शिक्षा, स्वास्थ्य और बुनियादी ढांचे की स्थिति भी चिंताजनक बताई जाती है। अनेक स्कूलों में शिक्षकों की कमी है, अस्पतालों में पर्याप्त दवाएं उपलब्ध नहीं हैं और सड़कों की हालत खराब है। कई बार इंटरनेट सेवाएं भी बाधित कर दी जाती हैं। ऐसे माहौल में युवाओं के भीतर असंतोष बढ़ना स्वाभाविक है। अब अनेक युवा खुलकर कह रहे हैं कि उनके संसाधनों का दोहन किया जा रहा है, जबकि बदले में उन्हें विकास और सम्मान नहीं मिल रहा। यही असंतोष अब सड़कों पर विरोध के रूप में दिखाई दे रहा है।

27 जुलाई को प्रस्तावित चुनावों की तैयारियां चल रही हैं और नामांकन प्रक्रिया शुरू हो चुकी है। हालांकि विरोधी पक्ष का आरोप है कि मौजूदा माहौल में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव संभव नहीं हैं। उनका कहना है कि भय और दबाव के वातावरण में लोकतांत्रिक प्रक्रिया अपना वास्तविक उद्देश्य पूरा नहीं कर सकती। जॉइंट अवामी एक्शन कमेटी ने सरकार को 14 जुलाई तक का समय दिया है और चेतावनी दी है कि मांगें पूरी नहीं होने पर 15 जुलाई से मुजफ्फराबाद मार्च फिर शुरू किया जाएगा।

यह स्थिति केवल कानून-व्यवस्था का प्रश्न नहीं, बल्कि लोगों के बुनियादी अधिकारों और सम्मान का भी विषय है। पीओके की जनता दया नहीं, अपने अधिकार मांग रही है। वह उस बिजली पर अपना हक चाहती है, जो उसके पहाड़ों से पैदा होती है। वह उस अनाज पर अधिकार चाहती है, जो उसकी जमीन से निकलता है, और वह सम्मान चाहती है, जो हर नागरिक का अधिकार है। यदि समय रहते संवाद और समाधान का रास्ता नहीं अपनाया गया, तो असंतोष और गहरा हो सकता है। इतिहास हमेशा यही याद रखता है कि किसी भी सरकार की सबसे बड़ी ताकत अपने नागरिकों का विश्वास होता है, न कि उनके खिलाफ इस्तेमाल की गई ताकत।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)